शोध पत्र- हिन्दी

चंद्रकांत देवताले का संवेदनशील स्त्री विमर्श

* डॉ. संजीव खैमरिया

* अतिथि व्याख्याता हिन्दी, शा. कन्या महावि. शिवपुरी म.प्र

चंद्रकांत देवताले स्वतंत्रता के पश्चात् के संवेदनशील कवियों में अपना अहम स्थान रखते है। विशेषकर स्त्री विमर्श के संबंध में उन्होंने अत्यधिक संवेदनशीलता का परिचय दिया है। नारी के विविध रूपों में चाहे वह पत्नी हो , बेटी हो, माता हो, या कोई भी आम गृहिणी, कामकाजी या अन्य औरत ,देवताले जी ने सभी के अंदर छिपी पीड़ा को जितनी गहराई से उभारने का प्रयास किया है उतना किसी अन्य कवि के शब्दों में नहीं दिखाई देता है। स्त्री विमर्श पर रचना करने वालों में वे कहीं अधिक संवेदनशील कवि हैं। नई कविता ने साहित्य के सभी क्षेत्रों में क्रांतिकारी प्रयोगों को जन्म दिया इसी कारण स्त्री विमर्श के क्षेत्र में भी कवियों ने ऐसे अनछुऐ मनोभावों को भी उजागर करने का प्रयास किया जो स्त्रियों को तो भोगने पड़ते ही हैं किंतु उन्हें आसानी से व्यक्त नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार के मनोभावों को पहचानने में देवताले जी को विशेष कौशल प्राप्त है।

घर के सारे काम करने के पश्चात् जब कोई औरत सोती है तब वह किसी आनंद की प्राप्ति के उद्देश्य से नहीं बल्कि थक कर टूट गये बदन की मन द्वारा न चाहने पर भी पराजित योद्धा की तरह गिर जाने की सहज प्रतिक्रिया के कारण सोई है और उस वक्त भी उसके माथे की सिलवटें यह बताती है कि उसे ,सो जाने पर अटके हुऐ कामों की अभी भी चिंता है इस अनुभूति को देवताले जी इन शब्दों में महसूस करते हैं–

1''सुख से पुलकने से नहीं रचने खटने से सोई हुई है स्त्री सोई हुई है
जैसे उजड़कर गिरी सूखे पेड़ की टहनी अब पड़ी पसर कर, मिलता जो सुख यह जागती अभी तक भी महकती अंधेरे में फूल की तरह या सोती भी होती,तो होंठों या भौंहों में तैरता अटका होता हंसी खुशी का एक टुकड़ा बचा खुचा कोई ... .पर यह तो माथे की सिलवटें तक नहीं मिटा पाती सोकर भी।''[1]

हर जगह न जाने कितने युगों से कठोर परिश्रम करती हुई औरतों को वे देखते हैं जैसे वे कोई मशीन हों जो बिना अपनी बुद्धि या इच्छा के सिर्फ दिये गये निर्देश पर काम करने के लिये बनी हो, उन कामों को करते हुऐ औरत के चेहरे पर आनंद नहीं एक मजबूरी साफ देखी जा सकती है–

2''यह औरत आकाश और पृथ्वी के बीच कब से कपड़े पछीट रही है, पछीट रही है शताब्दियों से धूप के तार पर सुखा रही है,

यह औरत आकाश और धूप और हवा से वंचित घुप्प गुफा में कितना आटा गूंथ रही है? गूंथ रही है मनों सेर आटा असंख्य रोटियां सूरज की पीठ पर पका रही है,एक औरत दिशाओं के सूप में खेतों को फटक रही है वक्त की नदी में दोपहर के पत्थर से शताब्दियां हो गई एड़ी घिस रही है,

एक औरत अनंत पृथ्वी को अपने स्तनों में समेटे दूध के झरने बहा रही है,

एक औरत अपने सिर पर घास का गठ्ठर रखे कब से धरती को नापती ही जा रही है, एक औरत अंधेरे में खर्राटे भरते हुए आदमी के पास निर्वसन जागती शताब्दियों से सोई है, एक औरत का धड़ भीड़ में भटक रहा है,

उसके हाथ अपना चेहरा ढूंढ़ रहे हैं उसके पांव जाने कब से सबसे अपना पता पूछ रहे हैं।''[2] पति के काम पर जाने के बाद घर की दीवारों में कैद औरत भले ही शरीर से स्वतंत्र हो लेकिन वह वहां भी अनदेखी जंजीरों में बंधी है, उस खाली समय में भी उसे वही करना होगा जो उसके लिये निर्धारित किया गया है। कोई भी ऐसा कार्य जो पति को शंका करने का अवसर दे वह सोच भी नहीं सकती है। उसका पूरा दिन काम में या पति के इंतजार में घर की व्यवस्था करने में ही निकलेगा चाहे उसकी मौलिक सृजनशीलता इन कामों से अधिक महत्वपूर्ण क्यों न हो। एक बंद घर में दीवारों के बीच एक गृहिणी की जीवनचर्या को भी देवताले जी की पैनी नजरों ने देख लिया है–

3''तुम्हारा पति,अभी बाहर है,तुम नहाओ,जी भरकर आईनेके सामने,कपड़े उतारो,आईनेके सामने पहनो, फिर आईने को देखो इतना कि वह तड़कने को हो जाये पर तड़कने के पहले अपनी परछाईं हटा लो घर की शांति के लिये यह जरूरी है क्योंकि यह हमेशा के लिये नहीं सिर्फ शाम तक के लिये बाहर है फिर याद करते हुए सो जाओ या चाहो तो अपनी पेटी को उलट दो बीचों बीच फर्श पर फिर एक एक चीज को देखते हुऐ सोचो और उन्हें जमाओ अपनी अपनी जगह पर अब वह आयेगा,तुम्हें कुछ बनालेना चाहिये,खाने के लिये,और ठीक से हो जाना होगा,सुधरे घर की तरह तुम्हारा पति एक पालतू

आदमी है या नहीं यह बात बेमानी है,पर यह शक्की हो सकता है इसलिये,उसकी प्रतीक्षा करो,पर छज्जे पर खड़े होकर नहीं,कमरेके भीतर बक्तका ठीक हिसाब रखते हुए
उसके आने के पहले प्याज मत काटो, प्याज काटने से शक की सुरसुराहट हो सकती है बिस्तर पर अच्छी किताबें पटक दो जिन्हें पढ़ना कतई आवश्यक नहीं होगा पर यह विचार पैदा करना अच्छा है कि अकेले में तुम इन्हें पढ़ती हो.''[3]

बेटी के पिता होने का और उन्हें बेहद प्यार करते हुऐ भी उनके भविष्य में निरंतर जलते रहने का अहसास सिर्फ बेटी का पिता ही कर सकता है। एक कवि के लिये तो बेटी का प्यार और भी भावुक बना देता है। अपने दिल के टुकड़े को अपने से दूर करने का भय उसे उसके भावी परिवार में सुखपूर्वक व्यवस्थित करने की जिम्मेदारी से ही कवि पिता भयभीत हो जाता है। बेटियों से प्यार करने वाले पिता के अंदर वात्सल्य का सागर तो होता है लेकिन वह इसी भय में बह जाने से बचने के लिये स्वयं को सिर्फ जिम्मेदारी निभाने वाला ही प्रस्तुत करता है कि कहीं उसका वात्सल्य उसे कमजोर न बना दे। सबकी नजरों से बचते हुऐ जब वह अपनी ही गोद में खेलती हुई नन्हीं परी जैसी बेटी को बढ़ता देखता है तो उसके भविष्य की चिंता में ही सिहर उठता है और न जाने कब वह घड़ी भी आती है जब उसे बेटी को विदा करना पड़ता है। जन्म लिये घर में ,परिवार में बढ़ते हुऐ,जमी जमाई जिंदगी को छोड़कर एक नये घर में स्वयं को प्रतिस्थापित करना और स्वयं को संतुष्ट दर्शाना इतना आसान नहीं है लेकिन सिर्फ बेटियां ही हैं जो पिता की चिंता को भांपकर स्वयं को इस योग्य बना लेती हैं। ऐसे पिता पुत्री के संवेदन को भी देवताले जी ने बखूबी महसूस किया है—

4'' पपीते के पेड़ की तरह मेरी पत्नी, मैं पिता हूं दो चिड़ियाओं का,जो चोंच में धान के कनके दबाऐ पपीते की गोद में बैठी हैं, सिर्फ बेटियों का पिता होने से कितनी हवा भर जाती है शब्दों में मेरे देश में होता तो है ऐसा कि फिर धरती को बांचती हैं पिता की कवि आंखें ...
बेटियों को गुड़ियों की तरह गोद में खिलाते हैं हाथ, बेटियों का भविष्य सोच बादलों से भर जाता है कवि का हृदय ,
एक सुबह,पहाड़ सी,दिखती हैं,बेटियां कलेजा कवि का,चट्टान सा होकर भी,थर्राता है,पत्तियों की तरह और अचानक डर जाता है कवि चिड़ियाओं से चाहते हुए उन्हें इतना करते हुऐ बेहद प्यार''[4]

संवेदनाओं का सागर यहीं नहीं थमता बल्कि एक पिता के अपनी बेटी के घर से विदा लेना भी कम कष्टकारी नहीं होता, बाहरी सामाजिक बंधनों से मजबूर और स्नेह के आवेग को जैसे तैसे बांधने के प्रयास में दोनों हृदय अपनी व्याकुलता लिये किसी तरह इस पीड़ा को वहन करते हैं इसीलिये कवि उस पीड़ा को सबसे कठिन मानता है—

5''बहुत जरूरी है पहुंचना,सामान बांधते बमुश्किल कहते पिता बेटी जिद करती एक दिन और रूक जाते न पापा एक दिन पिता के बजूद को जैसे आसमान से चाटती कोई सूखी जबान बाहर हंसते हुऐ कहता,कितने दिन तो हुऐ,सोचता कब तक चलेगा यह सब कुछ, सदियों से बेटियां रोकती होंगी पिता को एक दिन और और एक दिन.........दुनिया में सबसे कठिन है शायद बेटी के घर से लौटना''''[5]

मां के बिना जीवन के रस की कल्पना बेमानी है। उसके परोसे खाने में जो स्वाद है वह कितने ही लजीज व्यंजनों में नहीं है। इसकी अहमियत तभी पता चलती है जब हम उस स्नेह से वंचित हो जाते है। उसकी आंखें जानतीं हैं कि बेटे ने खाना खाया या नहीं ,पेट भरा या नहीं, खाना अच्छा लगा या नहीं, कितनी ही परेशानी क्यों न हो मां अपने बेटे को भूखा नहीं रहने देती, इस तरह खिलाने वाली मां को याद करते समय जब वे दिन याद आते हैं तो उसके परसे हुऐ खाने के आगे सब बेस्वाद लगने लगता है। इसीलिये मां का स्थान कोई नहीं ले सकता—

6''वे दिन बहुत दूर हो गये हैं जब मां के बिना परसे पेट भरता ही नहीं था वे दिन,अथाह कुऐं में,छूटकर गिरी,पीतल की,चमकदार बाल्टी की तरह,अभी भी दबे हैं,शायद कहीं गहरे
अपने बीबी बच्चों के साथ खाते हुऐ अब खाने की वैसी राहत और बेचैनी दोनों ही गायब हो गई हैं अब सब अपनी अपनी जिम्मेदारी से खाते हैं और दूसरों के खाने के बारे में एकदम निश्चिंत रहते हैं फिर भी कभी कभार मेथी की भाजी या बेसन होने पर मेरी भूख और प्यास को रत्ती रत्ती टोहती उसकी दृष्टि और आवाज तैरने लगती है और फिर मैं पानी की मदद से खाना गटक कर कुछ देर के लिये उन्ही बाल्टियों को ढूंढ़ता रहता हूं।''[6]

देवताले जी स्वयं तो क्या मां पर कोई कविता लिख ही नहीं सकता। किसी के पास न तो इतने शब्द हैं और न ही शब्दों में इतना सामर्थ्य है जो किसी मां को शब्दों में व्यक्त कर सके, हर हाल में जो प्रत्यक्ष रूप से सदा अपनी संतान के लिये खुशी खुशी सर्वस्व अर्पण करने को तैयार रहे और बदले में किसी भी प्रकार की अपेक्षा न करे ऐसी मां को कोई क्या व्यक्त कर सकता है। यह मां देह के बंधन से भी परे है। इसमें मानव या पशु का कोई भेद नहीं फिर जिन की भावनाओं को हम समझ ही नहीं सकते तो हम उन समस्त मातृ रूपों को कैसे कविता में बांध सकते हैं इसीलिये देवताले जी स्पष्ट कहते हैं कि वे भले ही हर प्रकार का स्त्री संवेदन महसूस कर सकते हों किंतु मां पर वे कविता नहीं लिख सकते हैं—

7''मां के लिये संभव नहीं हो सकती मुझसे कविता, अमर चिउंटियों का एक दस्ता, मेरे मस्तिष्क में रेंगता रहता है, मां वहां हर रोज चुटकी दो चुटकी आटा डाल देती है,

मैं जबभी सोचना शुरू करता हूं,यह किस तरह,होता होगा,घट्टी पीसने की आवाज,मुझे घेरने लगती है और मैं बैठे बैठे दूसरी दुनिया में ऊंघने लगता हूं जब कोई भी मां छिलके उतार कर चने ,मूंगफली या मटर के दाने नन्हीं हथेलियों पर रख देती है तब मेरे हाथ अपनी जगह पर थरथराने लगते हैं,
मां ने हर चीज के छिलके उतारे मेरे लिये देह आत्मा आग और पानी तक के छिलके उतारे और मुझे कभी भूखा नहीं सोने दिया,

मैंने धरती पर कविता लिखी है, चंद्रमा को गिटार में बदला है समुद्र को शेर की तरह आकाश के पिंजरे में खड़ा कर दिया है,सूरज पर कभी भी कविता लिख दूंगा,मां पर नहीं लिख सकता कविता''[7]

इन उदाहरणों में साफ जाहिर होता है कि देवताले जहां एक ओर स्त्री जीवन के कई नजरअंदाज पहलू उभारते हैं पहीं दूसरी ओर वे एक अत्यधिक संवेदनशील कवि भी हैं। इतने संवेदनशील कि उन्होंने नारी के इन अनुभवों की आत्मानुभूति की कल्पना करके अपनी शुद्ध प्रतिक्रिया को ही व्यक्त किया है। औरत के अकेलेपन के क्षणों की मनोदशा को भी वे भांप गये हैं। वहीं बेटी के प्रति पिता के और पिता के प्रति बेटी के भाव या मां से दूर हुऐ बेटे के लिये मां का महत्व या मां का बेटे के प्रति वात्सल्य नितान्त वास्तविक है। इनके वावजूद उनके शब्दों में बौद्धिकता के कलेवर में भावनात्मक आवेग और वेदनात्मक संवेदनशीलता की प्रधानता अलग ही देखी जा सकती है। अतः उन्हें स्त्री विमर्श का सबसे संवेदनशील कवि कहना उचित ही सिद्ध होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. एक सपना यह भी–कविता–चंद्रकांत देवताले।
2. औरत–कविता–चंद्रकांत देवताले।
3. घर में अकेली औरत के लिये–कविता–चंद्रकांत देवताले।
4. दो लड़कियों का पिता होने से –कविता–चंद्रकांत देवताले।
5. बेटी के घर से लौटना–कविता–चंद्रकांत देवताले।
6. मां जब खाना परोसती थी–कविता–चंद्रकांत देवताले।
7. मां पर नहीं लिख सकता कविता–कविता–चंद्रकांत देवताले।